इकाई 5 सामाजिक संगठन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- भारतीय समाज की तथाकथित अपरिवर्तनीय और गतिहीनता के विचार को समझ सकेंगेः
- उन विपुल एवं विविध साहित्यिक तथा शिलालेख संबंधी साक्ष्यों का उल्लेख कर सकेंगे जो सामाजिक परिवर्तन के चरित्र का पुनर्निर्धारण करने के लिए उपयोगी हैं,
- सामाजिक व्यवस्था पर उन विविध दृष्टिकोणों का विश्लेषण कर सकेंगे जो सामाजिक जड़ता तथा उसके मूलभूत आधारों के बीच विद्यमान थे,
- सामाजिक रूपांतरण में परिवर्तित होते भौतिक आधार की भूमिका का उल्लेख कर पाएंगे,
- नवीन सामाजिक आचार की विशेषताओं जैसे वैश्यों एवं शूद्रों की परिवर्तित होती स्थिति, नवीन शिक्षित वर्ग का उदय, जातियों की संख्या में गुणात्मक वृद्धि, कमज़ोर पड़ती वर्ण-व्यवस्था और सामंतीय पदों के उद्भव का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- सामाजिक तनावों के प्रमाणों की बढ़ती हुई संख्या के विषय में जान सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

कुछ दशकों से या यों कहें कि लगभग एक शताब्दी से हम उपनिवेशवादी तथा साम्राज्यवादी अवधारणा को सुन-सुनकर थक गए हैं कि भारतीय समाज सदियों से एक गतिहीन समाज रहा है। लेकिन इस तरह की अवधारणा सत्य नहीं है। इस इकाई में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि सन् 800 ई० से सन् 1300 ई० के पांच सौ वर्षों में किसी भी जीवंत वस्तु की भांति भारतीय सामाजिक संगठन और अर्थव्यवस्था, राजनीति तथा विचारों के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों के प्रति अत्यधिक सजग एवं गतिमान था। इस इकाई में उन नवीन सामाजिक आचारों के मूल सार पर भी बल दिया गया है, जिनके रूझान को नवीन भूमि अधिकारों तथा राज सत्ता के आधारों की प्रकृति ने सुनिश्चित किया।

5.2 समाज के पुनर्निर्धारण के लिए स्रोत

सन् 800 ई० से 1300 ई० के दौरान के पांच सौ वर्षों के सामाजिक संगठन का पुनर्निर्धारण करने के लिए पर्याप्त मात्रा में ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है। इस ऐतिहासिक सामग्री के अंतर्गत साहित्यिक एवं शिलालेख संबंधी दोनों प्रकार के स्रोत उपलब्ध हैं। व्यावहारिक तौर पर भारत की सभी बड़ी राजनीतिक शक्तियों के विषय में जानकारी हमें बड़ी संख्या में उपलब्ध अभिलेखीय सामग्री से ही होती है। यद्यपि संपूर्ण भारतीय स्तर पर अभिलेखों की संख्या को निश्चित नहीं किया गया है, फिर भी मोटे तौर पर अनुमान यह है कि उत्तर-गुप्त काल के अभिलेख हज़ारों की संख्या में हैं। ये अभिलेख भिन्न-भिन्न भाषाओं एवं लिपियों में उपलब्ध हैं। (इकाई 7 को भी देखें) उप-महाद्वीपीय क्षितिज के बृहत् विचार का परित्याग किए बिना ही ये प्रमाण क्षेत्रीय एवं स्थानीय विशेषताओं की पहचान करने में हमारी सहायता करते हैं।

साहित्यिक स्रोत विविध प्रकार के हैं। ये धर्मशास्त्रों पर मात्र टीकाओं तथा दूसरे निबंधों के रूप में नहीं हैं बल्कि हमें ये सामाजिक व्यवस्था में होने वाले उत्थान एवं पतन की जानकारी भी देते हैं। काव्यात्मक रचनाएं, नाटक, तकनीकी एवं वैज्ञानिक रचनाएं, संधियों से संबंधित लेख और भवन-निर्माण कला से उत्तर-गुप्त कालीन समाज में होने वाले परिवर्तनों पर व्यापक रोशनी पड़ती है। कल्हण की **राजतरंगणि,** श्रीहर्ष का ***नैशाधियाचरित,*** मेहरूतुंग की ***प्रबंधचिंतामणि,*** सोध्धला की ***उदय-सुन्दरी-कथा,*** जिनसेना की ***आदिपुराण*** सिद्धों के ***दोहे,*** मेधातिथि की ***मनुस्मृति*** पर टीका और विज्ञानेश्वर का ***याज्ञवल्कस्मृति*** पर भाष्य — ये सभी रचनाएं सन् 800 ई० से 1300 ई० तक की सामाजिक व्यवस्था का पुनर्निर्धारण करने के लिए काफी उपयोगी हैं।

5.3 ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण : बढ़ती सामाजिक कट्टरता

हूणों, अरबों, तुर्कों आदि के आगमन पर, जिनको "मलेच्छ" भी कहा जाता था, भय का एक ऐसा वातावरण निर्मित हुआ, जिसके अंतर्गत सदियों पुरानी सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने पर बल दिया जाने लगा। प्रसिद्ध धार्मिक दर्शन विद् शंकराचार्य ने कहा कि ***वर्ण*** तथा ***आश्रम धर्म*** दोनों अव्यवस्था की स्थिति में थे। ग्यारहवीं सदी ई० का लेखक धनपाल भी वर्ण व्यवस्था को लागू करने के विषय में अराजकता की बात करता है। छठी सदी ई० से 13वीं सदी ई० के बीच ऐसे बहुत से शासक हुए, जिन्होंने सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के काफी बड़े दावे प्रस्तुत किए। इसकी अभिव्यक्ति उनके अभिलेखों में भी हुई है। ***वर्णाश्रम-धर्म-स्थापना*** अर्थात् वर्ण और आश्रम व्यवस्था की स्थापना की सामान्य अभिव्यक्ति समकालीन अभिलेखों में भी हुई है। बारहवीं सदी ई० की ***मनसोल्लास*** नाम की रचना में वर्णाधिकारीन नाम के एक अधिकारी को उद्धत किया गया है, इस अधिकारी का उत्तरदायित्व वर्णों को बनाए रखना था। सामाजिक पदों को अवरुद्ध करके, इससे सामाजिक व्यवस्था में और कट्टरता पैदा करना, व्यवस्था को बदलने के सभी प्रयासों को नकारना यह कार्य मुख्य रूप से उन ब्राह्मणवादी नीति प्रवक्ताओं तथा राजनयिक सलाहकारों का था, जिनके व्यक्तिगत हित यथास्थिति को बनाए रखने में थे (इकाई 6 को भी देखें)। फिर भी, यह किसी भी तरह से एक सर्वव्यापी विशेषता न थी।

5.4 असंतोष की अभिव्यक्ति

जाति व्यवस्था के मूलभूत आधारों पर विशेषकर गैर-ब्राह्मण लोगों ने प्रश्न किए। सदियों पहले महात्मा बुद्ध ने जन्म के आधार पर जातियों के औचित्य को अनुचित कहा। बुद्ध का क्रोध मुख्य रूप से ब्राह्मणवाद-विरोधी था। यद्यपि ब्राह्मणवाद के इस तरह के विरोध अधिक लंबे समय में कुछ विशेष न कर पाए, लेकिन ये विरोध समाप्त नहीं हुए। ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध इस मंद असंतोष ने कुछ अंतरालों में लगातार अपनी आवाज़ को बुलंद किया। इस पर कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि जैन अमित गति ने अपने ग्यारहवीं सदी के ग्रंथ ***धर्मपरीक्षा*** में कहा कि जाति को व्यक्तिगत व्यवहार के आधार पर सुनिश्चित किया जाना चाहिए। ब्राह्मणों की जाति सर्वोच्चता को जैन लेखकों द्वारा ***कथाकोष प्रकरण*** जैसे ग्रंथों में चुनौती दी गई। एक व्यंग्यात्मक रचना ***लताकमेलका*** में एक ऐसे बौद्ध भिक्षु को उद्धत किया गया है जो जाति के महत्व से इंकार करता है, जाति को वह व्यर्थ कहता है और इस बुराई की भर्त्सना करते हुए जाति-आधार को समाप्त करने को कहता है। कश्मीर के महान् साहित्यकार क्षेमेन्द्र ने ***कुल-जाति-दर्प*** (जाति एवं वंश की व्यर्थता) को समाज के एक ऐसे रोग के रूप में उद्धत किया है, जिसके वे स्वयं को चिकित्सक होने का दावा करते थे ***पद्मपुराण*** में दो विचारधाराओं के बीच होने वाले संघर्षों का उल्लेख हुआ है। एक विचारधारा उन कट्टरपंथियों की है, शूद्रों से निर्धनता का जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा करती है तथा दूसरी उन वाममार्गी धर्मों को मानने वालों की है, जो शूद्रों को धन के महत्व का बोध कराती है।

ग्यारहवीं शताब्दी की एक रचना में सामाजिक पदों तथा जन्म के आधार पर सामाजिक विभाजन पर बल दिया गया है, न कि व्यवसाय के आधार पर। विभिन्न धर्मों के पुरोहितों को जहां एक ओर पाखंडी कहा गया है, वहीं पर दूसरी ओर शेष समाज का वर्गीकरण निम्नलिखित छः वर्गों के आधार पर किया गया है :

- समाज में राजा सहित शासक वर्ग (चक्रवर्तिन्) का सर्वोच्च स्थान था,
- द्वितीय स्थान अभिजात सामंतों का था,
- मध्यम वर्ग में व्यापारीगण, महाजन, गायों, भैसों, ऊंटों, घोड़ों आदि के स्वामी थे,
- छोटे व्यापारी एवं छोटे किसान इस श्रेणी में थे,
- नीचे स्तर पर कारीगरों तथा शिल्पकारों के संगठन के सदस्य थे, और
- सबसे नीचे स्तर पर चण्डालों सहित वे दूसरे लोग थे जो चिड़ियों एवं पशुओं का वध करने जैसे "हीन कार्यों" को करते थे।

उपरोक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि इसके अंतर्गत सामाजिक वर्गीकरण करते समय उन आर्थिक तत्वों पर भी ध्यान दिया गया है, जो सामाजिक स्तर को सुनिश्चित करते हैं। ब्राह्मणों ने अपने हितो के अनुरूप जो सामाजिक वर्गीकरण किया उसकी अपेक्षा में इस तरह के प्रयासों का लक्ष्य किसी समान समाज की स्थापना करना न था। यदि इस तरह के वर्गीकरण से ब्राह्मणों की पक्षपातपूर्ण एवं ईर्ष्यालु धारणाएं स्पष्ट होती हैं, तब इस तरह का विश्लेषण और आवश्यक हो जाता है जिससे कि समाज के पुनर्निर्धारण को स्पष्ट रूप से अधिक तर्कसंगत किया जा सके।

5.5 भौतिक आधार में परिवर्तन तथा नवीन सामाजिक व्यवस्था

उपरोक्त समीक्षा के परस्पर विरोधी रूझानों से स्पष्ट है कि सामाजिक संगठन निस्सरण की स्थिति में थे और उनमें तालमेल का पूर्ण अभाव था। लेकिन ऐसा उन परिवर्तनों के अनुरूप न हो सका, जो इस उपमहाद्वीप की अर्थव्यवस्था के अंदर घटित हो रहे थे। सामाजिक व्यवस्था के यंत्र को उस समय समाविष्ट करना असंभव होता है, जब कमजोर वर्गों की एक बड़ी संख्या के आर्थिक स्थिति में होते सुधार की अवहेलना कर दी जाती है। उत्तर-गुप्त काल में विशेषकर आठवीं सदी ई० से भूमि अनुदानों की संख्या में जो अभूतपूर्व वृद्धि हुई, उस एकमात्र कारक ने उत्तर-गुप्त कालीन समाज के रूझान को सुनिश्चित किया (इकाई 1.2.1 को भी देखें)। कृषि प्रसार पर हुए इसके प्रभाव ने संपूर्ण सामाजिक दृष्टिकोण को परिवर्तित कर दिया। इस नए सामाजिक परिवर्तन की निम्नलिखित विशेषताएं थीं :

- स्थानीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला,
- इसके व्यवहार पर शहरी केन्द्रों में होने वाले उतार-चढ़ाव का प्रभाव पड़ा,
- इसका संबंध मुद्रा-व्यवस्था से भी था,
- सामाजिक एवं आर्थिक गतिहीनता तथा किसानों को अधीनस्थ करने और पीड़ित गैर-कृषि मज़दूरों की वृद्धि में इसने योगदान किया, और
- इसके परिणामस्वरूप शासक भू-स्वामी अभिजात वर्ग के पदानुक्रम का उद्भव हुआ।

(खंड 1 की 1-4 तक की इकाइयों और खंड 3 के उपभाग 9.3.4 को भी देखें)

एक नए सामाजिक वातावरण का निर्माण हो रहा था। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय अर्थव्यवस्था की ये नवीन प्रवृत्तियां सामंतीय ढांचे के निर्माण के लिए अनुकूल थीं। राजनीतिक संगठन के क्षेत्र में भी (इसके विषय में हम खंड 3 में लिखेंगे) सत्ता के अधिकांश केन्द्रों में सामंतीय प्रवृत्तियां थीं और इनका आधार श्रेणीबद्ध किए गए भूमि-अनुदान थे। तेजी से होते जिस आर्थिक परिवर्तन की व्याख्या ऊपर की गई है, उसने निश्चय ही सामाजिक वातावरण को परिवर्तित किया। यह सामाजिक परिवर्तन भारत के अपरिवर्तनीय एवं गतिहीन समाज की उस काल्पनिक अवधारणा को धराशाही करता है, जिसका प्रचार उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के समर्थक इतिहासकारों के द्वारा किया गया था। दुःख की बात यह है कि राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भी इस तरह की मान्यताओं पर प्रश्न नहीं किया। पिछले तीन दशकों से किए जा रहे अध्ययनों में भारतीय सामाजिक वातावरण की गतिशीलता एवं स्पंदन पर उचित प्रकार से ध्यान केन्द्रित किया गया है और इनको आर्थिक प्रतिमानों में होने वाले परिवर्तनों के साथ कड़ीबद्ध किया गया है।

बोध प्रश्न 1

1) उन स्रोतों को सूचीबद्ध कीजिए जो सन् 800 से 1300 ई० के बीच सामाजिक पुनर्निर्धारण पर प्रकाश डालते हैं?

....

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा कथन सही (√) और कौन-सा गलत (X) है :

   i) जाति व्यवस्था के मूलभूत आधारों के विषय में सन् 800 ई० से 1300 ई० के बीच प्रश्न उठाए गए।

   ii) सामाजिक ढांचा गतिहीन बना हुआ था।

   iii) *वर्ण*-व्यवस्था अव्यवस्थित अवस्था में थी।

   iv) ग्यारहवीं सदी ई० की साहित्यिक रचना सामाजिक पदों का विभाजन जन्म के आधार पर करने की अपेक्षा व्यवसायों के आधार पर करने पर बल देती है।

3) वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध उभरे असंतोष पर 10 पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

5.6 नया सामाजिक वातावरण

आठवीं सदी ई० के बाद और तेरहवीं सदी ई० में तुर्की राज सत्ता के स्थापित होने तक जो सामाजिक संगठन विद्यमान थे, उनकी निम्नलिखित विशेषताएँ थी :

- *वर्ण*-व्यवस्था में कुछ संशोधन हो जाने से शूद्रों का रूपांतरण खेती करने वाली जातियों में हुआ, जिससे कि वे वैश्यों के समीप आ गए,
- बंगाल एवं दक्षिण भारत में नई ब्राह्मण व्यवस्था की स्थापना हुई। इन क्षेत्रों में बीच के *वर्ण* विद्यमान नहीं थे और अंततः उस शिक्षित वर्ग का उदय हुआ, जो *वर्ण*-व्यवस्था में उचित स्थान प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहा था।
- नई वर्ण-संकर जातियों में विलक्षण वृद्धि हुई,
- असमान भूमि तथा सैनिक शक्ति के वितरण के कारण ऐसी सामंतीय व्यवस्था का उद्भव हुआ जिसने *वर्ण*-व्यवस्था की सभी सीमाओं को लांघ दिया; और
- ऐसे प्रमाण भी उपलब्ध हैं, जिनसे सामाजिक तनावों की वृद्धि का पता चलता है।

5.6.1 कृषकों के रूप में शूद्रों का उदय

ग्रामीण क्षेत्र तथा कृषि गतिविधियों के फैलाव के कारण शूद्रों के विषय में जो अवधारणाएं थीं, उनमें परिवर्तन हुआ। उत्तर-गुप्त काल की विधि-पुस्तकों ने कृषि को सभी *वर्णों* के लिए *सामान्य-धर्म* (सामान्य व्यवसाय) के रूप में शामिल कर दिया। पाराशर की *स्मृति* में बल दिया गया है कि जहां एक ओर ब्राह्मणों के छः कर्तव्यों—अध्ययन करना, पढ़ाना, यज्ञ करना, दूसरों की सहायता करने के तौर पर यज्ञों की अध्यक्षता करना; तीनों उच्च *वर्णों* के धनी लोगों से उपहारों को स्वीकार करना और उपहार देना—के साथ-साथ वे स्वयं को कृषि कार्यों

के साथ भी संबंधित कर सकते थे और वे इन कृषि कार्यों को शूद्रों के परिश्रम द्वारा पूरा कर सकते थे। ब्राह्मणों को यह भी अधिकार था कि पापों से स्वयं को बचाने के लिए वे बैलों के साथ सही व्यवहार करें और अनाज की एक निश्चित राशि को राजा, देवताओं एवं अपने साथी ब्राह्मणों को दे सकते थे।

इस तरह के परिवर्तनों से निश्चय ही ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का आभास मिलता है। अब ***वर्ण*** संबंधी मानकों को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता थी। इस दिशा में किए जाने वाले प्रयास का सबसे बड़ा संकेत यह था कि वैश्य एवं शूद्रों के बीच की दूरी कम हो रही थी। जहां एक ओर इस रुझान का प्रारंभ ईसा की प्रारंभिक सदियों में हो चुका था और दूसरी ओर उत्तर-गुप्त काल की सदियों में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि वैश्य कृषक जाति के रूप में व्यावहारिक तौर पर अपनी पहचान को खो बैठे। सातवीं सदी ई० के प्रारंभ में भारत आने वाले प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन-सांग ने शूद्रों को कृषकों के रूप में उद्धत किया है। ग्यारहवीं सदी ई० के प्रारंभिक वर्षों में अलबरूनी महमूद गज़नवी के साथ भारत आया तो उसने शूद्रों तथा वैश्यों के मध्य कोई अंतर न पाया। स्कन्द पुराण भी वैश्यों की खराब हालत का उल्लेख करता है। ग्यारहवीं सदी ई० के आते-आते उनको अनुष्ठानिक एवं वैधानिक दोनों तरह से शूद्रों के समक्ष माना जाने लगा। उदाहरणार्थ, अलबरूनी का कथन है कि यदि शूद्र एवं वैश्य श्लोकों का उच्चारण करते तो उनकी जीभ काट दी जाती थी।

कुछ ऐसे शूद्र भी थे जिनको ***भोजयन्ना*** कहा जाता था। इन शूद्रों के द्वारा भोजन तैयार किया जाता था और इस भोजन का ब्राह्मण लोग भी सेवन करते थे। बहुत से तान्त्रिक एवं सिद्धि की शिक्षा देने वाले शूद्र थे और ये मछुआरों, चमड़े का काम करने वालों, धोबी, लुहार आदि के कार्यों को करते थे। आठवीं सदी ई० के एक ग्रंथ का कथन है कि नयी संकर जातियों का उद्‌भव—वैश्य वर्ण की महिलाओं तथा छोटी जातियों के पुरुषों के बीच वैवाहिक संबंध हो जाने के कारण हुआ। ***अनाश्रित शूद्रों*** का भी उल्लेख हुआ है। ये ऐसे शूद्र थे जो आत्म-निर्भर थे तथा जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। ये शूद्र स्थानीय प्रशासनिक समितियों में भी थे और यदा-कदा ये भी शासक अभिजात वर्ग में शामिल हो जाते थे। शूद्रों की इस तरह की उपलब्धियाँ निश्चित रूप से काफी कम थीं। प्रारंभिक मध्यकालीन अर्थव्यवस्था एवं राजनीतिक तंत्र को शक्ति प्रदान करने के लिए निर्भर कृषकों, हलवाहकों एवं कारीगरों की अति आवश्यकता होती थी। उनकी इस आवश्यकता के विषय में यह कहा गया कि ये अपेक्षाकृत आत्म-निर्भर स्थानीय अर्थव्यवस्था तथा ग्रामीण अभिजात वर्ग के एक प्रभुत्व सम्पन्न वर्ग के उदय के लिए उत्तरदायी थे। इस तरह की आवश्यकता की भरपाई अधिकतम वैश्यों एवं शूद्रों के द्वारा ही की जा सकती थी। ऐसा ब्राह्मणों की कुंठित विचारधारा के बावजूद भी हुआ। ब्राह्मणों की इस कुंठित विचारधारा की अभिव्यक्ति पाराशर के उस दृष्टिकोण में भी होती है जिसके द्वारा शूद्रों को यह चेतावनी दी गई थी कि अगर वे ***द्विजों*** की सेवा करने के अपने कर्तव्यों की अवहेलना करेंगे तब उनको नरक में जाने जैसे भयंकर परिणामों को भुगतना होगा। जैन धर्म के कुछ धार्मिक कट्टरवादियों ने भी इस अवधारणा को विकसित किया कि शूद्रों को धार्मिक दीक्षा प्राप्त करने का अधिकार न होगा।

5.6.2 बंगाल एवं दक्षिण भारत में मध्यम वर्णों का अभाव

वैश्यों एवं शूद्रों के मध्य दूर होते विभेदों के कारण एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का उद्‌भव हुआ जिसके अंतर्गत बंगाल एवं दक्षिण भारत में मध्यम ***वर्ण*** लुप्त हो गये। इन क्षेत्रों में नवीन ब्राह्मणवादी व्यवस्था केवल ब्राह्मणों एवं शूद्रों के लिए उपलब्ध करायी गयी थी। ऐसा केवल इसलिये हुआ क्योंकि इन क्षेत्रों में गैर-ब्राह्मणवादी धर्मों का प्रभाव अधिक था। ब्राह्मणवाद की प्रगति की प्रकृति ने इस नये घटना क्रम में योगदान किया। यह संस्कृत भाषा बोलने वाले आक्रामक लोगों के व्यापक विस्थापन के कारण नहीं हुआ था। इसका मुख्य कारण अन्तर-मिश्रण एवं उत्संस्करण था।

दूर-दराज़ के क्षेत्रों में कबीलाई एवं गैर-ब्राह्मण लोगों को शूद्रों के रूप में ब्राह्मणवादी व्यवस्था के अंतर्गत स्वीकृत करा लिया गया। प्रारंभिक मध्यकालीन ग्रंथों में ऐसी प्राचीनतम वन आदिवासियों की सूची दी गई है, जिन्होंने उस समय की कई राजनीतिक शक्तियों के उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान दिया। नौवीं सदी ई० से 13वीं सदी ई० तक सभी राजनीतिक शक्तियों का संघर्ष अमीरों के साथ हुआ। ***ब्रह्मवायवर्त पुराण*** में 13वीं सदी ई० के बंगाल के विषय में विवरण है और यह ग्रंथ ***अगारी, अम्बस्थ, भील, चण्डाल, कांची*** आदि ऐसी आदिवासी जातियों का उल्लेख करता है जिनको ब्राह्मणिक व्यवस्था में शूद्रों के रूप में स्वीकृत कर लिया गया था। जहाँ तक दक्खन का प्रश्न है यह ***अमीरों*** के विषय में भी सत्य था।

वल्लालचरित में 12वीं सदी ई० के बंगाल के एक सेन राजा के जीवन का विवरण है और यह ग्रंथ सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्धारण का उल्लेख करता है। राजा ने ***कैवर्थों,*** कुम्हारों, लुहारों, मालियों आदि की सामाजिक स्थिति में सुधार किया जबकि उसने सुनारों, व्यापारियों और ब्राह्मणों की स्थिति को नीचे गिरा दिया। एक अन्य सेन राजा लक्ष्मण सेन के शासन काल में एक लेखक व्यापारियों के *शकराध्वज* के उत्सव के संबंध में लिखता है कि "अरे! वे व्यापारी कहाँ गये जिन्होंने आप लोगों को (व्यापारी वर्ग को) एक उच्च स्थान प्रदान किया था, लेकिन अब आप लोगों को हल या जानवरों की तरह प्रयुक्त किया जा रहा है"। ***वल्लालसेन*** ने जिन व्यापारिक ब्राह्मणों का अवमूल्यन किया उनकी तुलना निशाद ब्राह्मणों से की जा सकती है। निशाद ब्राह्मण वे प्राचीन पुजारी थे जो ब्राह्मण व्यवस्था के अंतर्गत प्रवेश पाने के लिए प्रयासरत थे और बाद में उनको ब्राह्मण होने की

मान्यता तो प्राप्त हो गई, किन्तु समाज में उनको नीचा स्थान प्राप्त था। दक्षिण भारत में शैव ब्राह्मण उपदेशक को ***बासव*** कहा जाता और वह महिलाओं तथा पुरुषों के लिए धार्मिक समानता का उपदेश देता था। पदों का जो विवरण दिया गया है, उससे भी मध्यस्थ ***वर्णों*** को समाप्त करने की प्रवृत्ति का पता चलता है। ***कायस्थों, करणों, लेखकों*** और ***लिपिकारों*** को भी शूद्रों के रूप में वर्गीकृत किया गया। मध्यकालीन दक्खन में ***गवुन्डों*** (आधुनिक कर्नाटक में जिन्हें गौवड़ा नाम से जाना जाता है) की भी यही स्थिति थी।

5.6.3 नव शिक्षित वर्ग का उदय

भूमि अनुदानों की अभूतपूर्व वृद्धि में भूमि के लेन-देन, स्वामित्व के प्रमाणों का रख-रखाव और भूमि की नाप के आंकड़ों को रखना जैसे कार्य भी निहित थे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता थी, जो अपने कार्य में निपुण एवं पढ़ा-लिखा हो। लगभग एक दर्जन किस्म के लेखक एवं कागजात को रखने वाले वर्गों में कायस्थ भी एक वर्ग था। बंगाल से प्राप्त हुए व गुप्त अभिलेखों में पहली बार कायस्थ शब्द को उद्धृत किया गया है, लेकिन उत्तर-गुप्त कालीन अभिलेखों में रिकार्ड रखने वालों के नामों का भरपूर मात्रा में उल्लेख हुआ है। ***कायस्थों*** के अतिरिक्त ***करण, करणिक, पुस्तपाल, लेखक, दिविरा, अक्षरचांचू, धर्मलेखिन, अक्षपटालिक*** जैसे नामों का भरपूर उल्लेख हुआ है। यद्यपि इन शिक्षित लोगों को विभिन्न ***वर्णों*** से भर्ती किया गया था, लेकिन बाद में ये एक जाति विशेष में परिवर्तित हो गए और इन पर भी कड़े वैवाहिक प्रतिबंध लागू होते थे। नौवीं सदी ई० से ही हमें वल्लभ, गण्डा, माथुर, कटारिया, श्रीवास्तव, निगम आदि बहुत से बड़े कायस्थ परिवारों का उल्लेख प्राप्त होने लगता है। ग्यारहवीं सदी ई० से कायस्थों के साथ कुल और वंश के प्रयोग और 12वीं-13वीं सदियों से कायस्थों के साथ जाति एवं ज्ञाति जैसे शब्दों के प्रयोग से स्पष्ट है कि कायस्थों का एक जाति के रूप में उदय हो चुका था। कायस्थों ने व्यक्तिगत स्तर पर पढ़ने-लिखने एवं साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान करना प्रारंभ कर दिया था। उड़ीसा का ***तथागतरक्षिता*** व्यवसाय के तौर पर चिकित्सक परिवार से एवं जाति के रूप में कायस्थ जाति से संबंधित था और 12वीं सदी ई० में वह बिहार में स्थित विक्रमशिला विश्वविद्यालय में तंत्रवाद का सम्माननीय प्राध्यापक था।

5.6.4 नई मिश्रित जातियों के उदय में अभूतपूर्व वृद्धि

जिन सदियों के इतिहास का हम अध्ययन कर रहे हैं उन सदियों के दौरान होने वाले सामाजिक परिवर्तनों की यह महत्वपूर्ण विशेषता है। ***ब्रह्वायवर्त पुराण*** में ***देशभेद*** शब्द का प्रयोग हुआ है। ***देशभेद*** का शाब्दिक अर्थ भिन्न-भिन्न क्षेत्रों पर आधारित है। किन्तु यहां पर इसका तात्पर्य जातियों की भिन्नता से है। बंगाल से प्राप्त दसवीं सदी ई० के एक अभिलेख में ब्रहद्छत्रिवान (36 वर्णों का निवास) नाम के एक गांव का उल्लेख हुआ है। अब कोई भी ***वर्ण*** एक समान न रहा था और सब क्षेत्रीय संबंधता, गोत्रों की शुद्धता, विशेष प्रकार की शिल्पकलाओं, व्यवसायों तथा कार्यों के आधार पर विभाजित हो गए।

i) ब्राह्मणों में

जातियों की बढ़ती संख्या की विशेषता ब्राह्मणों के बीच सबसे अधिक प्रतीत होती है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि ब्राह्मण वर्ण अब केवल अपने छः कर्तव्यों तक सीमित न था। मंत्री, पुरोहित, न्यायाधीश आदि जैसे सरकारी पदों पर बने रहने के अतिरिक्त, ब्राह्मणों ने सैनिक कार्यों को भी करना शुरू कर दिया था। दृष्टांत के तौर पर, पृथ्वीराज चौहान का सेनापति स्कन्द नाम का ब्राह्मण था और सपदलालक्ष के शासक (राजस्थान में) की सेना का नेतृत्व भी राक नाम के एक ब्राह्मण ने किया था। नौवीं तथा दसवीं सदी ई० के पेहोआ तथा सियादोनी के अभिलेखों में ऐसे ब्राह्मणों का उल्लेख हुआ है जो घोड़ों एवं पान के थोक व्यापारी थे। ग्यारहवीं सदी ई० के कश्मीरी लेखक क्षेमेन्द्र ने ऐसे ब्राह्मणों को उद्धृत किया है जो कारीगरों और नर्तकों के कार्य करते थे और वे शराब, मक्खन-दूध, नमक आदि वस्तुओं के कार्यों में भी शामिल थे। ब्राह्मणों की कार्यात्मक भिन्नता निम्नलिखित उपाधियों से भी स्पष्ट होती है :

श्रोतिया, पंडित, महाराज पंडित, दीक्षित, याज्ञनिक, पाठक, उपाध्याय, ठाकुर, अग्निहोत्री आदि।

मिताक्षर, जो याज्ञवल्क्य की प्रसिद्ध स्मृति टीका है, के अंतर्गत ब्राह्मणों की 10 जातियों का उल्लेख है, ये ब्राह्मण जातियां देव (वे ब्राह्मण विद्वान होते थे जो धर्म एवं शास्त्रों के प्रति समर्पित थे) से लेकर चण्डाल तक (जो दिन में तीन बार संध्या नहीं करते थे) थीं। इनके बीच में ऐसे शूद्र ब्राह्मण भी थे, जो हथियारों के व्यवसाय द्वारा तथा मंदिर के पुजारियों के रूप में जीवन व्यतीत करते थे।

ब्राह्मण ***वर्ण*** के बीच हुए विभाजन का कारण क्षेत्रीय संबंधता भी थी। उत्तर भारत में हमें सारस्वत, कान्यकुब्ज, मैथी, गण्डा एवं उत्कल ब्राह्मणों के नाम सुनाई पड़ते हैं। गुजरात एवं राजस्थान के क्षेत्रों में उनकी पहचान मूल (निवास करने का मूल स्थान) शब्द के द्वारा की गई है और उनको मोधा, उदिवया, नागर आदि में विभाजित किया गया। बाद में मध्यकाल के अंत तथा ब्राह्मणों का विभाजन 180 मूलों में हो गया था। इसके अंतर्गत सर्वोच्चता की भावनाएं भी निहित थीं। ब्राह्मणों के विलक्षण विस्थापन के कारण कुछ क्षेत्रों को ***पाप देश*** (अपवित्र स्थान) समझा जाने लगा। इन क्षेत्रों में सौराष्ट्र, सिन्ध एवं दक्षिणपथ शामिल थे।

ii) क्षत्रियों में

आठवीं सदी ई० के बाद क्षत्रियों के बीच भी अनेक जातियों की उत्पत्ति हुई और उनकी संख्या में तेजी से वृद्धि होने लगी। अकेले उत्तर की 36 राजपूत जातियों के नामों की सूचियां उस समय के ग्रंथों में दी गई हैं। इन राजपूत जातियों की उत्पत्ति आबादी के विभिन्न वर्गों जैसे कि कायस्थों एवं ब्राह्मणों से हुई। इनकी उत्पत्ति कुछ आदिवासी जातियों से भी हुई थी और कुछ तो मूल रूप से इन्हीं से बनी थीं। राजपूत जातियों का उदय उन विदेशी आक्रमणकारियों से भी हुआ जो यहीं पर बस गए तथा जिनका विलय भारतीय सामाजिक-व्यवस्था में हो गया। क्षत्रिय वर्ण की परम्परागत अवधारणा के अनुसार, क्षत्रियों का मुख्य कार्य शासन को संचालित करना था, लेकिन विचारवेत्ताओं ने उन गैर-क्षत्रियों को क्षत्रिय मानने से इंकार नहीं किया जो शासक बन गए थे। ऐसा कहा जाता है कि "राजपूत कबीलों से शेखावत एवं वघेला जैसी सम्माननीय राजपूत जातियों की उत्पत्ति हुई और इनसे निम्न राजपूत जातियों को कोलियों, खन्ताओं तथा मेरों में रूपांतरित किया गया"। भारत के कई भागों में शासन करने वाले शासकों की वंशावली को जान-बूझकर काफी बढ़ा-चढ़ाकर वर्णित किया गया और इसका विवरण हम इकाई 10.4, 11.4.3 तथा 12 में करेंगे। कुछ क्षत्रियों को ***संस्कार-सत्र वर्जित*** कहा जाता था अर्थात् उनको अनुष्ठानिक संस्कारों से अलग कर दिया गया। इसको ऐसे भी समझा ज़ा सकता है। कि यह निम्न स्तर के संस्कारों द्वारा ब्राह्मणिक व्यवस्था में प्रवेश प्राप्त करने के लिए आवरण मात्र था।

iii) वैश्यों एवं शूद्रों में

जाति वृद्धि की प्रक्रिया ने वैश्यों एवं शूद्रों को भी अछूता नहीं छोड़ा। जैसा कि ऊपर बताया गया है (इकाई 5.6.1) कि ये दोनों बड़े ***वर्ण*** एक दूसरे के करीब आ रहे थे। उस समय उनके जातियों के रूप में अस्तित्व के अकाट्य प्रमाण उपलब्ध हैं। जिस तरह से ब्राह्मण जातियों की पहचान क्षेत्रीय संबंधता के साथ की गई है उसी तरह से वैश्य जातियों की पहचान भी की जाती है। इस तरह से वैश्यों को श्रीमाली, नागर, पालीवाल, दिसावत आदि कहा जाता था। इस तरह से शूद्रों की भी भिन्न जातियां थीं और वे अनेक प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करती थीं। वे कृषि-मज़दूर छोटे किसान, कारीगर, शिल्पकार, नौकर-चाकर होते थे। ***वायर्क्त पुराण*** में शूद्रों की सौ जातियों की सूची को उद्धृत किया गया है। शूद्रों का जातियों में उप-विभाजन भी क्षेत्र एवं भूमि की संबंधताओं पर आधारित था। शूद्र जातियों का उदय भी ***पादूकाकृत*** एवं ***चर्मकार*** (चमड़े का काम करने वाले कारीगर) आदि जैसे औद्योगिक कार्य करने वाले समूहों से हुआ था। उस समय में शिल्पकारों का जातियों में परिवर्तित हो जाना एक सम्पूरक प्रक्रिया थी। ऐसा प्रतीत होता है कि ***नपिता, मोदक, ताम्बूलिक, सुवर्णकार, सूत्रकार, मालाकार*** आदि जातियों का उद्भव बहुत से शिल्पों से हुआ था। अभिजात शासक वर्ग की वृद्धि के साथ ही इन जातियों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई। आश्रित शब्द से स्पष्ट है कि ये जातियां अपनी आजीविका के लिए इन पर निर्भर थीं। उनका आश्रित होना तथा उनकी गतिहीनता व्यापारिक संगठनों (जिनको ***श्रेणी*** या ***प्रकृति*** कहा जाता था) को ब्राह्मण दान प्राप्तकर्ताओं को हस्तांतरण में अभिव्यक्त होता है। यादव ***महासामंत*** भील्लमा-द्वितीय के 1000 ई० के अभिलेख में दान किए गए ऐसे गांवों का विवरण किया गया है, जिनके अंतर्गत अठारह व्यापारिक संगठन निहित थे। संयोगवश, ये व्यापारिक संगठन भी जातियों के रूप में कार्यरत थे।

बोध प्रश्न 2

1) ब्राह्मणों के छः कर्तव्यों की सूची बनाइए।

....

....

....

....

....

....

2) नई संकर जातियों में वृद्धि किन कारणों से हुई? लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित में कौन सा कथन ठीक एवं कौन-सा गलत है। ठीक (√) एवं गलत (×) के चिह्न लगाइए :

   i) आठवीं सदी ई० तथा 13वीं सदी ई० के बीच ***वर्ण*** मानकों को पुनर्गठित किया गया।

   ii) मध्यस्थ **वर्ण** बंगाल एवं दक्षिण भारत में विद्यमान थे।

   iii) भूमि एवं सैनिक शक्ति के असामान्य वितरण के कारण **वर्ण** संबंधी भिन्नताओं की सीमाओं को पार करते हुए सामंतीय पदों में वृद्धि हुई।

   iv) प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने शूद्रों को कृषक बताया है।

5.7 भूमि वितरण, सामंतीय पद एवं वर्ण विभेद

उत्तर गुप्त-कालीन आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि विभिन्न प्रकार के नवीन (देखें इकाई 1 एवं 3) भूमि अधिकारों का उद्भव हुआ। अधिकारियों तथा सामंतों का पदानुक्रम भी भूमि के असमान वितरण के प्रभाव को परिलक्षित करता है (इकाई 9.4 को भी देखें)। सामंतों एवं अधिकारियों के बहु-पक्षीय कार्यों (देखें इकाई 9.5) से अन्य विशेषताओं के साथ-साथ सैनिक अनुबंधों के प्रति अधिक रूझान स्पष्ट होता है। शक्ति विसर्जन की प्रकृति तथा भूमि-विवरण के ढांचे के साथ इसके संबंधों ने निश्चित रूप से सामाजिक-व्यवस्था को प्रभावित किया। इस प्रभाव का महत्वपूर्ण परिणाम ***वर्ण*** विभेद की सीमाओं को पार करते हुए सामंतीय पदों के उदय के रूप में हुआ। शासक अभिजात वर्ग के अंदर अब केवल क्षत्रिय ही नहीं होते थे। सामंतीय पद सभी वर्णों के लोगों के पास थे और इसके प्रमाण ***मन्सरा*** (स्थापत्य कला पर एक ग्रंथ) नामक ग्रंथ में मिलते हैं। इनके अनुसार सामंती पदानुक्रमों में किसी भी ***वर्ण*** का व्यक्ति ***प्रहरका*** एवं ***अस्त्रग्रहिण*** जैसे छोटे पदों को प्राप्त कर सकता था। ***अस्त्रग्रहिण*** यद्यपि सबसे छोटा सैनिक पद था, फिर भी वह 500 घोड़े, 5000 हाथी तथा 50,000 सैनिकों के साथ-साथ 500 महिलाएं, नौकर-चाकर एवं एक रानी को रख सकता था। हम इन आंकड़ों को संख्या की दृष्टि से नहीं देखते हैं लेकिन इस विवरण से इतना सुनिश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भूमि एवं शक्ति के इस नवीन वितरण ने ***वर्ण*** संबंधी असमानताओं पर एक कुठाराघात किया। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि ***ठाकुर, राउत, नायक*** जैसी उपाधियां भी क्षत्रियों या राजपूतों तक सीमित न थी। यह उपाधियां कायस्थों एवं अन्य जातियों को भी प्रदान की गई। इन जातियों को भूमि आवंटित की गई और इन्होंने सैनिक कार्यों को भी किया। कुल्लूक द्वारा ***मनु स्मृति*** पर की गई टीका में यह उल्लेख हुआ है कि बड़े-बड़े व्यापारीगण शासक भू-पतियों के अभिजात वर्ग में भी सम्मिलित हो रहे थे। कश्मीर में एक उच्च पदवी ***राजनका*** थी। इसका साहित्यिक अर्थ था "लगभग एक राजा" यह ब्राह्मणों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। आगे चलकर यह राजदान नाम से वंशीय नाम के लिए प्रयोग होने लगा। सामंतीय उपाधियों को कारीगरों ने भी धारण किया। विजयसेन के देवपारा अभिलेख में उल्लेख है कि शूलपानि ने, जो कि वरेन्द्रा (पश्चिम बंगाल में स्थित) के कारीगरों का मुखिया था, ***रणका*** नाम की उपाधि को धारण किया था।

सामंतीय पद धारण करने वालों में सामाजिक पहचान के प्रतीकों तथा चिह्नों का संबंध भी भू-स्वामित्व से था। सम्मान के प्रतीक झालर, छतरी, घोड़े, हाथी, पालकी, ***पंच-महाशब्द*** की प्राप्ति (देखें इकाई 9.6) आदि सभी सामंतीय पदानुक्रम में विशेष स्थान पाने पर निर्भर था। उदाहरण के लिए ***चक्रवर्ती*** तथा ***महासामंतों*** को मुख्यद्वार (सिंहद्वार) बनाने का अधिकार था, लेकिन इसका निर्माण छोटे सामंतों द्वारा नहीं किया जा सकता था। भिन्न-भिन्न स्तर के सामंतों एवं अधिकारियों के लिए भिन्न-भिन्न आकार के निवास स्थलों की व्यवस्था भी असमान भू-स्वामित्य का परिणाम थी।

5.8 सामाजिक तनावों में वृद्धि

यद्यपि इस समय बहुत से परिवर्तन और रूपांतरण हुए, और इस तरह के परिवर्तन ***वर्ण*** विभेद की सीमाओं को लांघकर हो रहे थे। किन्तु आठवीं सदी ई० के बाद के यह सामाजिक परिवर्तन न तो सौहार्दपूर्ण थे और न ही एक समान व्यवस्था की स्थापना के लिए थे। इस समय में कई तरह के सामाजिक तनावों की भी अभिव्यक्ति हुई।

जिस सामाजिक-व्यवस्था का आधार आर्थिक शक्ति के असमान वितरण पर आधारित हो, वह निश्चय ही असमान होगी। यद्यपि शूद्रों के सामाजिक स्तर में वृद्धि हो रही थी लेकिन छूआछूत (अस्पृश्यता) संपूर्ण सामाजिक-व्यवस्था में व्याप्त थी। अधिकतर शूद्र ***वर्ण*** के लोग वास्तविक तौर पर मज़दूर थे जो अपने सामंत स्वामियों के लिए कार्य करते थे। चाहे वे कृषि में कार्यरत थे या उद्योग-धंधों में थे। यद्यपि कुछ अनाश्रित शूद्रों के उदाहरण भी उपलब्ध

होते हैं, किन्तु उनकी संख्या बुहत कम है। यथाकथित अपवित्र व्यवसायों से जुड़े रहना, प्रतिबंधित कार्यों को करते रहने का अपराध, पैतृक कार्यों से जुड़े रहना और भौतिक अपवित्रता आदि ये सभी छूआछूत की वृद्धि के कारण थे। ***ब्रह्द् नारदिय पुराण*** में शूद्रों के पूजा स्थलों से अलग होने के प्रारंभ का विवरण दिया गया है। ***चण्डाल*** और ***दोम्ब*** ऐसी आवाज़ करने वाली छड़ी को लेकर चलते थे जिससे उनके आने का पता लग जाता था। और लोग स्वयं को उनके स्पर्श से बचा सकते थे। जिस समय वस्तुपाल खम्मात का गवर्नर था, उसने चबूतरों को विभिन्न जातियों के लिये निर्माण कराया ताकि उन दुकानों में जहां पर दही की बिक्री की जाती थी विभिन्न जातियों के मिश्रण को रोका जा सके। यद्यपि ब्राह्मण विधिवेत्ताओं ने महिलाओं के सम्पत्ति संबंधी अधिकारों के प्रति कुछ चिंता व्यक्त की, जिसके अंतर्गत स्त्रीधन भी शामिल था। किन्तु इस काल में वास्तविक तौर पर अत्याचारी सती-प्रथा का प्रारंभ हुआ। राजा हर्ष की माता का उदाहरण विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि उसने अपने पति प्रभाकरण वर्धन की मृत्यु से पूर्व ही स्वयं को सती कर दिया था। इसका उल्लेख बाणभट्ट के ***हर्षचरित*** में भी हुआ है। ***राजतरंगिणि*** में कश्मीर के इतिहास का उल्लेख है और उसमें भी कश्मीर के शाही परिवारों में होने वाली सती की घटनाओं को उद्धृत किया है। उत्तर एवं दक्षिण भारत में बहुत से ***सती-सत्त*** पट्टिकाओं के पुरातात्विक प्रमाण भी स्पष्ट रूप में मिलते हैं।

संकुचित संघर्षों के कारण समाज में पर्याप्त तनाव उत्पन्न हुआ। जैन धर्म में विश्वास करने वाले ब्राह्मण को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता। ***लताकमेलका*** में दो ब्राह्मणों के बीच काफी उत्तेजक शब्दों (अब्रहमन्य) में बहस होती है और बिना किसी कारण के एक दूसरे पर ब्राह्मण न होने का आरोप लगाते हैं। मध्यकालीन समय में धार्मिक सम्प्रदायों में जातियों के रूप में कई प्रकार की समानान्तर धाराएं पैदा हो गई। अनुष्ठानों, भोजन, पहनावा आदि में विभिन्न प्रकार के अंतरों के कारण धार्मिक विघटन पैदा हुआ। बौद्ध धर्म का विभाजन 18 सम्प्रदायों में हो गया। कर्नाटक में भी लिंगायत एवं वीर शैवों के बीच झगड़ा हुआ। अक्सर धार्मिक सम्प्रदाय जातियों में परिवर्तित हो जाते थे। क्या ये ऐतिहासिक विडम्बना नहीं है कि जिन धर्मों ने जातीय असमानताओं को दूर करने की प्रतिज्ञा की थी उन्होंने जन्म के आधार को पुष्ट किया और उनका स्वयं भी प्रसार जाति-व्यवस्था के रूप में हुआ? यह भी सत्य है कि ये संकुचित तनाव अक्सर भूमि-अनुदान अर्थव्यवस्था की भी उपज थे ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मणवादी धार्मिक सम्प्रदायों एवं गैर-ब्राह्मणवादी सम्प्रदायों के बीच अधिक से अधिक भूमि पर अधिकार करने के लिए प्रतिस्पर्धा हुई। इसके फलस्वरूप सभी बड़े-बड़े धार्मिक प्रतिष्ठान विशाल भूमि के स्वामी बन गए। आठवीं सदी ई० के बाद की सदियों में मत्तमायरा क्षेत्र के राजा अवन्तिवर्मन (संभवतः यह मध्य भारत में ग्वालियर के समीप का चालुक्य राजकुमार था) और दहला के चेदी राजा के विषय में यह कहा जाता है कि इनके राज्य शैव सिद्धांत के धार्मिक मुखियाओं के रूप में कार्य करते थे। बाद में वे सामंतों के तौर पर शासन करने लगे। ग्यारहवीं सदी ई० में जैनियों के एक सम्प्रदाय के आंदोलन के कारण गुजरात एवं राजस्थान में एक ऐसे सम्प्रदाय का उदय हुआ जिसको विधिचैत्य कहा जाता था। यह आंदोलन एक प्रकार का विरोध-आंदोलन था और इसने उन लालची एवं लोलुप जैन पुजारियों का विरोध किया जो भूमि पर अधिकार करने का प्रयास कर रहे थे।

जहां तक सामाजिक तनावों का प्रश्न है, नव उदित शिक्षित वर्ग के रूप में कायस्थों की अपनी स्वयं की भूमिका थी। इस वर्ग का उदय स्पष्ट तौर पर ब्राह्मणों के लिए एक चुनौती के रूप में हुआ। उड़ीसा के कायस्थ तथागतरक्षिता का उदाहरण पहले ही इकाई 5.6.3 में उद्धृत किया जा चुका है जो विक्रमशिला विश्वविद्यालय में तंत्र का सम्माननीय प्रोफेसर था। कश्मीर के क्षेमेन्द्र ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि कायस्थों के उदय के कारण आर्थिक विशेषाधिकारों में गिरावट आई क्योंकि कायस्थ अधिकारियों ने ब्राह्मणों को भूमि अनुदान प्रदान करने में कुछ हिचकिचाहट दिखाई। कश्मीर में मंदिरों के पुरोहितों की समिति ने अपनी मांगे पूरी करवाने के लिए ***प्रयोपवेश*** (भूख हड़ताल) का आयोजन किया। ब्राह्मणों ने अपनी सर्वोच्चता को पुनः स्थापित करने के लिए द्वेषवश कायस्थों को अक्सर शुद्र कहा है।

ग्रामीण समाज में जो तनाव-व्याप्त थे, वे भी किसी तरह से कम महत्वपूर्ण न थे। कश्मीर में दमरों के विद्रोह, बंगाल में रामपाल के शासनकाल के ***कैवर्त्तो*** का विद्रोह, तमिलनाडु में भूमि पर जबरदस्ती अधिकार करने के विरोध में आत्मदाह के कार्य, पांडय राज्य में शूद्रों द्वारा दान की गई भूमि पर अधिकार करने की चेष्टा—ये सभी भू-अभिजात वर्ग के विरुद्ध बढ़ते असंतोष की ओर संकेत करते हैं।

बोध प्रश्न 3

1) आठवीं सदी ई. के बाद की सदियों में बढ़ते सामाजिक तनावों के विषय में लगभग दस पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....
....
....
....

2) जिन सामंतीय पदों का उदय ***वर्ण*** संबंधी विभेद की सीमाओं को लांघकर हुआ, उस पर दस पंक्तियां लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) विभिन्न शिल्पों से उदित होने वाली छः जातियों के नाम बताइए।

....
....
....

5.9 सारांश

सन् 800 ई. से 1300 ई. के बीच की सदियों में हुए सामाजिक परिवर्तनों का सर्वेक्षण करने पर निम्नलिखित विशेषताओं का पता चलता है:

- अत्यधिक सम्पन्न एवं विभिन्न प्रकार के स्रोतों के विषय में,
- उस ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण का जो सामाजिक कट्टरता का प्रतीक था, तथा ***वर्ण*** व्यवस्था के अंतर्गत यथा स्थिति को बनाए रखना चाहता था,
- जाति-व्यवस्था के आधार पर उठाए गए प्रश्नों का जहां सामाजिक स्तर को आर्थिक कारकों ने निश्चित किया,
- परिवर्तित होते भौतिक आधार का नवीन सामाजिक वातावरण के उद्भव पर प्रभाव था,
- ***वर्ण*** व्यवस्था में होने वाले सुधारों का विशेष रूप से वे सुधार जो वैश्य एवं शूद्रों की स्थिति में हुए और बंगाल तथा दक्षिण भारत में मध्यम ***वर्णों*** के अस्तित्व समाप्त होने का,
- एक शिक्षित वर्ग के रूप में कायस्थों के उदय का,
- सभी ***वर्णों*** में जातियों की संख्या में होती वृद्धि का,
- भूमि वितरण एवं सामंतीय पदों के उदय के बीच के संबंधों का और ये पद बाद में किस प्रकार से वर्ग सीमाओं को लांघकर आगे बढ़े; और
- समाज में व्याप्त तनावों के कारण सौहार्द तथा समानता के अभाव के विषय में।

5.10 शब्दावली

अनाश्रित : आत्मनिर्भर शूद्र

आश्रित : निर्भर शूद्र

भोज्यान्न : ऐसे शूद्र जिनके द्वारा तैयार किए गए भोजन को ब्राह्मण ग्रहण कर सकते थे

गवणदास : कर्नाटक का ऐसा लिपिक (शिक्षित) वर्ग जिसके हित भूमि से जुड़े थे

कुल-जाति दर्प : जाति एवं वंश का अभिमान

मूल : परिवार एवं जाति के उदय का स्थान

पाप दिशाएं : अपवित्र क्षेत्र

प्रकृति रस : व्यापारिक संगठन

संस्कार वर्जित : ऐसे लोग जिनको अनुष्ठानिक अधिकारों से अलग कर दिया

वर्णाधिकारिन : वे अधिकारी जिन पर वर्णों की देखभाल का उत्तरदायित्व था

5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपना उत्तर भाग 5.9 के आधार पर दें।
2) i) √ ii) × iii) √ iv) √
3) अपना उत्तर भाग 5.4 के आधार पर दें।

बोध प्रश्न 2

1) उनके अध्ययन करने, अध्यापन करने, यज्ञ सम्पन्न करने सहित आदि छः कर्तव्य थे। देखें उपभाग 5.6.1
2) उत्तर के लिए उपभाग 5.6.4 देखें।
3) i) √ ii) × iii) √ iv) √

बोध प्रश्न 3

1) अपने उत्तर को भाग 5.8 के आधार पर दें।
2) भाग 5.7 देखें।
3) ***नपितर, मोदक, मलकारा*** आदि कुछ जातियां थीं। उपभाग 5.6.4 भी देखें।